पूज्य सोगानीजी जन्म जयंती विशेषांक

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

MAY 2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

पूज्य श्री सोगानीजी की ११४ वीं जन्मजयंती पर
उन्हें कोटी कोटी वंदन

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरूपी सपूत कोई जागा नहीं था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ हैं, धर्मात्माएँ हैं, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५१, अंक-३२९, वर्ष-२७, मई-२०२५

कहानरत्न किरणें!!

- अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

राग तो चुड़ैल और डाकिनीके समान है; रागसे प्रेम करनेसे यह तुझे खा जायेगा - निगल जायेगा। पापरुपी रागकी तो क्या बात, परन्तु जिन्होंने शुभराग, हजारों रानियाँ छोड़कर, राजपाट छोड़कर, पंचमहाव्रतके शुभरागसे प्रेम किया है - वे आनन्दस्वरुप आत्माको घायल करते हैं, उसकी हत्या करते हैं । वीतरागभाव धर्म है, किन्तु जो रागभावसे धर्म मनवाते हैं वे वीतरागके शत्रु हैं, पापी ओर मिथ्यादृष्टि हैं । ८९

*

जैसे मुसाफिर एक गाँवसे दूसरे गाँव जाता है तो पाथेय साथ लेकर जाता है, तो दूसरे भवमें जानेके लिये भी कुछ कलेवा चाहिए या नहीं? श्रद्धाज्ञानरूपी पाथेय साथ लेकर जाना चाहिए। पत्नीकी ओर देखे तो पाप, पुत्रकी ओर देखे तो पाप, लक्ष्मीकी ओर देखे तो पाप, पर ओर देखते सभी पाप ...पाप और पाप है । अरे! तुझे कहाँ जाना है ? राग और मैं एक हूँ ...क्या ऐसा मिथ्यात्वका कलेवा साथ लेकर जाना है? मैं रागसे भिन्न ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ ...ऐसा कलेवा साथ ले जाए तो धर्ममार्गमे बढ़नेमें यह काम आएगा। अन्तरके असंख्य प्रदेशोंमें गहरे, अति गहरे ध्रुव

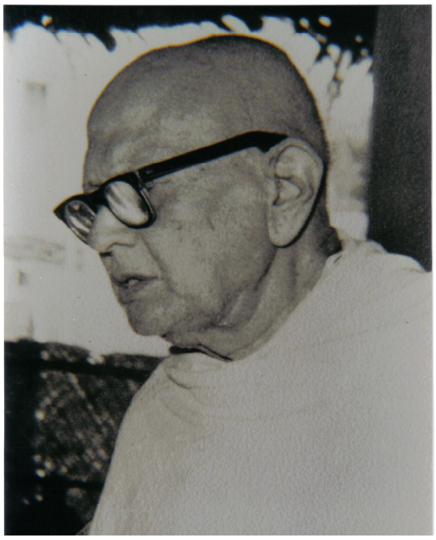

तलको थाह लेना है। (पर्यायको ले जाना है।) यह तो धीरोंका-वीरोंका काम है। ९०

*

प्रश्न :- ज्ञानका स्वभाव जानना ही है तो स्वयं स्वयंको कैसे नहीं जानता ?

उत्तर :- इसका स्वभाव स्वयंको जाननेका है, परन्तु अज्ञानीकी दृष्टि परसन्मुख है, इसलिये स्वयंको नहीं जानता । परमें कहीं न कहीं अधिकता रहती ही है, इसलिये अन्यको अधिक माननेसे स्वयंको नहीं जानता । इसका अधिकताका बल परमें जाता है, जिससे स्वयं जाननेमें नही आता। ९१

*

शरीर-धन-मकान आदि अनुकुलता देखकर तुझे विस्मय और कौतूहल होता है, किन्तु भगवान आत्मा तो महिमावन्त पदार्थ है, अजायबघर है, उसके प्रति कौतूहल तो कर ! भगवान सर्वज्ञदेवने जिनके इतने-इतने बखान किये और महिमा गायी है, ऐसा आत्मा कैसा है उसे देखनेका कौतूहल तो कर ! एक बार विस्मयता तो कर कि तूँ कितना विराट, कितना महान पदार्थ है ! उसे देखनेका, अनुभव करनेका कौतूहल तो करे ! नरकके नारकी घोर यातनामें पड़े रहने पर भी ऐसे महान आत्माके प्रति कौतूहलता कर आत्मानुभव कर लेते हैं, तो तूँ ऐसे अनुकुल योगमें एक बार कौतूहल तो कर। ९२

*

जिसे पर्यायकी स्वतंत्रता हृदयंगम नहीं होती उसे द्रव्य-गुण कि जो अव्यक्त स्वभाव-शक्ति है, उसकी स्वतंत्रताकी तो श्रद्धा हो ही नहीं सकती। वर्तमान अंश स्वतंत्र है - यह जिसको स्वीकृत हो, उसे ही द्रव्यकी स्वतंत्रताकी श्रद्धा हो सकती है । ९३

*

तेरे स्वभाव-सागरका अविनय न हो, और आराधना हो, उसकी यह बात है । आत्मामें एक एक गुणकी अनन्त शक्ति शुद्ध है । जो परिणति ऐसे अनन्त-अनन्त गुणोंकी शुद्धताका आश्रय लेती है , उस परिणतिको शुद्धत्व परिणमन कहते हैं, उसे ही आत्माकी आराधना कहते हैं । ९४

*

जिन्हें आत्माको समझनेके लिये अन्तरमें सच्ची धुन और छटपटी लगे, उन्हें अन्तर मार्ग समझमें आए बिना रह ही नहीं सकता। वे स्वयंकी धूनके जोरसे अन्तरमें मार्ग बनाकर आत्मस्वरुपको प्राप्त कर ही लेते हैं । ९५

*

व्रत-तप-जपसे आत्म-प्राप्ति होगी - यह जिस प्रकार शल्य है उसी प्रकार शास्त्राभ्यासे आत्मा प्राप्त होनेकी मान्यता भी शल्य है । आत्मवस्तुकी ओर दृष्टि करते ही आत्म-प्राप्ति होती है । ९६

*

अनन्त प्रतिकूल द्रव्य आ पड़े तो भी आत्मा हिलाये न हिले । तीव्रसे तीव्र अप्रशस्त अशुभ परिणाम हो, उनसे भी ध्रुव आत्मा हिलाये न हिले , और एक समयकी पर्यायसे भी आत्मा हिलाये न हिले - ऐसा अगाध सामर्थ्यवान ध्रुव आत्मा है , उसे लक्ष्यमें लेनेसे भव-भ्रमण छूटे - ऐसा है। ९७

*

मुझे बाहरका कुछ चाहिए - ऐसा मानने वाला भिखारी है । मुझे मेरा आतमा ही चाहिए - ऐसा मानने वाला बादशाह है । आत्मा अचिंत्य-शक्तियोंका स्वामी है, जिस क्षण जगे उस क्षण ही वह जाग्रत-ज्योति-आनन्द स्वरुप अनुभवगम्य हो जाता है । ९८

*

तूँ पहले चारित्र-दोष टालनेका प्रयत्न करता है । पर उसके पूर्व दर्शनशुद्धिका प्रयत्न कर। दृष्टिमें विकल्पका त्याग तो करता नहीं और बाह्य त्याग कर बैठता है - यह तो मिथ्यात्व के ही पोषणका कारण है । ९९

*

गाय-भेंस आदि पशुओंके कण्डे मिलते ही गरीब स्त्रियां बहुत खुश हो जाती हैं और

धन-वैभव मिलने पर सेठ लोग बाग बाग हो जाते हैं। परन्तु कण्डे ओर धनादिमें कोई अन्तर नहीं। एक बार आत्माके वैभवका दर्शन करे, तो बाह्य वैभवोंकी निर्मूल्यता भासित होजाए । १००

*

देव-गुरू-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि भाई तुझे तेरी महिमा भासित होतो उसमें, हमारी महिमा तो हो ही जाती है। तुझे तेरी महिमा तो भासित होती नहीं, तो तुझे हमारी भी यथार्थ महिमा भासित नहीं हुई - तूँने हमें पहचाना ही नहीं। १०१

*

सर्पके बच्चेको अपनी माँका ज्ञान है, जिससे वह सर्पसे नहीं डरता । सिंहके बच्चेको अपनी माँका ज्ञान है, जिससे वह उससे नहीं डरता । इसी प्रकार ज्ञान तो उसे कहें कि जिससे निडरता और निर्भयता आए, वह कब आए - कि जब शुद्धात्माका यथार्थ ज्ञान हो, तब। १०२

*

जीव-दया पलनेके भावको लोग जैन-संस्कार मानते हैं, परन्तु वह सच्चा जैन-संस्कार नहीं है । सच्चा जैन-संस्कार तो राग से भिन्न चैतन्यको मानना है - यही वास्तविक जैन-संस्कार कहलाता है ।

"जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म,

इन्ही वचनसे समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म " । १०३

*

बारह अंगके ज्ञानको भी स्थूल ज्ञान कहा है । जो बारह अंगका ज्ञान लिखे लिखा नहीं जाता, पढ़े पढ़ा नहीं जाता, सुनकर भी कहा नहीं जा सकता, फिर भी उस ज्ञानको स्थूल कहा है । जो ज्ञान रागसे भिन्न होकर पर्यायको भगवान बनाता है, उस ज्ञानको भगवती-प्रज्ञा कहते हैं, सम्यग्ज्ञान कहते हैं - इस भगवती-प्रज्ञा द्वारा ही भवका अन्त आता है । १०४

*

अन्यायसे उपार्जित लक्ष्मी - बलात्कारसे लायी हुई स्त्रीके समान लम्बे समय तक नहीं टिकती । जैसे पतिके गुण-प्रेमसे आकर्षित स्त्री सदा साथ रहती है, वैसे ही न्यायसे उपार्जित लक्ष्मी अधिक समय तक टिकती है। नीति तो वस्त्र-समान है और घर्म आभूषणोंके समान है। जैसे वस्त्र बिना आभूषण शोभित नहीं होते, वैसे नीति बिना धर्म शोभायमान नहीं होता । १०५

*

वीर्यका स्फुरण - जितना दोषकी ओर जाता है उतना बालवीर्य है और वीर्यका जितना ढलन गुणकी ओर जाए - उतना पंडितवीर्य है। १०६

*

भद्रता तो यह है कि स्वयंके अल्प दोष भी कोई बतलाए अथवा स्वयं देखे तो तुरन्त ही स्वीकार करे ; अन्यके अल्प गुणका भी बहुमान करे। स्वयंकी महत्ता बढानेके लिए, अन्यकी हीनता करनेमें जिस प्रकारके विचार-वाणी और वर्तन होते हैं - वह भद्रता नहीं, परन्तु वक्रता कहलाती है । स्वयंकी जो सीमा है उस सीमासे उपरान्त स्वयंकी महत्ता बतलानेका जो वर्तन होता है - वह वक्रता है । १०७

*

धन्य गुरु !! धन्य शिष्य !!

शिष्यरत्न पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचन्द्रजी सोगानीजी प्रति प्रमोदपूर्ण आशीर्वचन !!

...दो जगह है। देखो ! (बोल) ३५७. देखा? 'परिणाम का विवेक तो जो अनंत सुखी होना चाहते हैं उनको सहज होना चाहिये।' देखा? और ६८ वे (बोल में) आता है। वहाँ ना देंगे। 'प्रश्न :- अनुभव होने के बाद परिणाम में मर्यादा आ जाती है न ? विवेक हो जाता है न ?' ऐसा प्रश्न है। 'उत्तर :- विवेक की बात एकबाजू रखो; एक दफा विवेक को छोड़ दो ! (-पर्याय की सावधानी छोड़ दो !) परिणाम मात्र ही 'मैं' नहीं; 'मैं' तो अविचलित खूँटा हूँ; मेरे में क्षणिक अस्तित्त्व है ही नहीं। विवेक के बहाने भी जीव परिणाम में एकत्व करते हैं।' वहाँ ऐसा कहा और यहाँ पर हाँ कही। अपेक्षा से (बात है)। यहाँ हाँ कही है। देखो! 'परिणाम का विवेक तो जो अनंत सुखी होना चाह हैं उनको सहज होना चाहिये।' सहज होना चाहिये ! दोनों जगह निशानी की है, हं! आ..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७१-७२, दि. ०९-०७-७५, प्र.-८४, ५२:४५ मिनट पर)

*

...जिसने राग और द्वेष को, विषय-कषायरूपी शत्रु को दूर किया है, ऐसे पुरुष को तो उसका आत्मा ही ध्यान के लिये सच्चा अत्यंत निर्मल आसन है। आ..हा..हा...! 'निहालभाई' ने एक जगह कहा है न ? कि, मैं तो पालथी लगाकर अंदर बैठ जाता हूँ। भाषा ऐसी सरल कर दी है ! पालथी का अर्थ कि, मै तो अंदर में बैठ जाता हूँ। 'पालथी लगाकर' ऐसा (आता) है। (क्या अंदर में) पालथी लगाते होंगे ? इसका अर्थ कि, मेरी पर्याय वहाँ थम जाती है। आ..हा..हा...! लोगों को यह विशेष लगे। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। पर्याय को द्रव्य में स्थापित करना, उसमें लीन करना उसका नाम पालथी लगाकर बैठ गया, उसका अर्थ वैसा। आसन लगाया ध्रुव में ! वैसे। ऐसा मार्ग कठिन, भाई !

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७३-७४, दि. ११-०७-७५, प्र.-८६, १२:३५ मिनट पर)

*

आ..हा..हा...! तेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनंद भरा है न ! वह कौन कराये और कौन सिखाये ? कि, स्वयं। आ..हा..हा...! मृग की नाभि में कस्तूरी (है) उसे उसकी खबर नहीं। (यहाँ जीव को) पता चलता है तब स्वयं देखता है कि, ओ..हो...! जहाँ मैं खड़ा हूँ सो तो पर्याय है और यह पर्याय जिसकी है वह तो महातत्त्व है ! यह पर्याय उसके आधार पर खड़ी है। है ऐसी भाषा ? यह शब्द 'निहालभाई' मैं है। किसीने ऐसा पूछा कि, 'यह बात न्याय से दिमाग में बैठती है, परन्तु अभी भी ध्रुव स्वभाव की तरफ नहीं जाना होता। इसका क्या कारण ?' आता है उसमें? आता है। कहीं न कहीं आता है जरूर ! बड़ा समुद्र है ! तब कहते हैं कि, जिस पर्याय में तुझे न्याय से (बात) बैठती है, विकल्प से-न्याय से (समझ में आती है) वह पर्याय किसी के आधार पर खड़ी है कि नहीं? समझ में आया ? जिस पर्याय में तुझे न्याय से (बात) बैठी वह पर्याय कहाँ है ? किसके आधार पर है ? निश्चय से पर्याय ही पर्याय का आधार वह यहाँ नहीं लेना है। पर्याय जिसके आधार पर रहती है वैसा जो ध्रुव (तत्त्व है) उसका लक्ष कर तो तुझे अनुभव होगा। आ..हा..हा...! पर्याय में यदि यह बात तुझे बैठी तो वह पर्याय किसके आधार पर खड़ी है ? यानी कि, इसका उत्पाद् किसके आधार पर है ? किसके आधार पर ? बिना किसी के आधार पर उत्पाद् हुआ क्या ? जिसके आधार पर पर्याय हुई, खड़ी है, मोजूद है उसका आधार ले ! आ..हा..हा...! ऐसी बात बहुत सूक्ष्म। जीव को करना तो यह है। बाकी सब बातें हैं। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७५-७६, दि. १३-०७-७५, प्र.-८८, ०९:३५ मिनट पर)

*

...तीन लोक के नाथ की वाणी सुनना, वह वाणी परद्रव्य है, आ..हा..हा...! उसे सुनने के लक्ष से तो विकल्प है। फिर भी एक जगह ('निहालभाई'ने) ऐसा कहा है न ? भाई ! आचार्य के शब्दों से आनंद का रस टपकता है। वह किस अपेक्षा से ? स्वभाव का आश्रय लेकर जो पढ़े, समझे... आ..हा..हा...! उसको वहाँ आनंद झरता है, ऐसा कहना है। वांचन, श्रवण के वक्त भी धर्मी को तो स्वभाव की शुद्धि की वृद्धि होती ही रहती है। आ..हा..हा...! वह (वांचन, श्रवण) के कारण के नहीं। उस वक्त अपनी शुद्धि पर, ज़ोर है न उस पर ? आ..हा..हा...! परिणाम मेरा ध्यान करो तो करो। मैं क्यों करुँ ? आ..हा...! लोगों को कठिन लगे। उसे (-द्रव्य को) जाने कौन ? (तो कहते हैं कि) जानती तो है पर्याय। पर्याय जानती है कि, परिणाम ध्रुव का ध्यान करो तो करो। पर्याय ऐसे जानती है। परन्तु मैं किसका ध्यान करूँ ? 'मैं' मतलब 'ध्रुव'। आ..हा...! ऐसी अटपटी बातों का समाधान नहीं समझे तो जीव को शांति नहीं मिलती परन्तु अशांति का खदबदाहट हुआ ही करता है। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८-७९, दि. १७-०७-७५, प्र.-९२, ०९:४० मिनट पर)

*

'सोगानी' की दृष्टि का ज़ोर द्रव्य पर बहुत था ! दो जगह लिखा है कि नहीं ? यह हमारी पद्धति-द्रव्यप्रधान कथन है। शुरूआत में है। है न ! है ऐसा एक जगह। (पहले पन्ने

पर चर्चा में) देखो ! **'अपनी तो यही दृष्टिप्रधान शैली है।'** वह शैली। उनको कोई उपदेश तो करना नहीं था। उनको कोई दुनिया में राजी हो और लोग इकट्ठे हो ऐसा तो कुछ करना नहीं था। है न ? प्रश्न है कि, 'आप शुद्ध पर्याय को दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं या ज्ञान की अपेक्षा से ? उत्तर :– दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं; ज्ञान की अपेक्षा से नहीं।' क्योंकि ज्ञान जानता है ऐसा (कहना है)। दृष्टि में तो भेद नहीं है न ! 'दृष्टि करने के प्रयोजन में भिन्नता का ज़ोर दिये बिना दृष्टि अभेद नहीं होती। इसीलिये दृष्टि की अपेक्षा से ही भिन्न कहते हैं। और अपनी तो यही 'दृष्टिप्रधान' शैली है, सो ऐसे ही कहते हैं।'

(दूसरा) ४३५ है। ४३५ (बोल में) हं ! '(मुझे) द्रव्य का बहुत पक्ष हो गया है...' (यानी कि) हमारा लक्ष–अधिक ज़ोर वहाँ पर है। 'इसलिये कथन में द्रव्य से (द्रव्य की प्रधानता से) ही सब बातें आती हैं।' दो जगह आया न! (बोल नं.) २ और यह ४३५ वाँ। सो तो यथार्थ है।

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–७८, दि. १७–७–७५, प्र.–९२, २५:२० मिनट पर)

*

...प्रभु ! एक समय में परमात्मस्वरूपरूप बिराजमान है ! उसे आत्मा कहते हैं न ? 'नियमसार' की ३८ वीं गाथा में लिया न! नहीं? यह ध्रुव, अभेद, शुद्ध चैतन्यघन सो आत्मा। पर्याय को वहाँ नहीं ली। आ..हा..हा...! ऐसा जो भगवान पूर्णस्वरूप चैतन्यदल ! वह पर्याय में नहीं आता। भाई ने दृष्टांत दिया है न ? 'निहालभाई' ने ! दर्पण का नहीं दिया? दर्पण का दृष्टांत दिया है। दर्पण की पर्याय में यह सब भासित होता है। उसका दल जो है वह पर्याय में नहीं आता। आ..हा..हा...! जबकि प्रतिबिंब तो पर्याय में आता है न? सर्प, कोयला, अग्नि, बर्फ। है तो उसकी पर्याय, वह (स्वयं) नहीं परन्तु उसकी पर्याय में भासित होता है। परन्तु पर्याय में पूरा चैतन्यदल नहीं आया। क्योंकि यह तो पलटती दशा है, जबकि वस्तु तो एकरूप है। आ..हा..हा...! यानी कि, पर्याय में दल नहीं, दल तो दल में है। आ..हा..हा...! ऐसा भेदज्ञान जिसको नहीं है वे बंधते हैं, ऐसा कहते हैं।

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–७८, दि. १८–०७–७५, प्र.–९३, १०:४५ मिनट पर)

*

...जब योग की परिपक्व अवस्था होती है यानी कि अंदर स्थिर होता है तब जिसको आत्मबुद्धि का अधिक अभ्यास हुआ है, जिसने आत्मस्वरूप की तीव्र भावना की है। भावना नाम एकाग्रता–ऐसे निश्चल आत्मस्वरूप का अनुभव करनेवाले को... चलित न हो ऐसी स्थिरता जहाँ जमी है। आ..हा..हा...! आनंद की घूँट पर घूँट पीये जाता है। भाई ने दृष्टांत दिया है–गन्ने के रस का ! 'निहालभाई' ने ! गन्ना... गन्ना ! तृषा लगी हो (तब) गन्ने का रस जैसे घट... घट... घट... घट... घट... घट... घट... आ..हा..हा...! वैसे अनुभव के काल में गन्ने के रस के माफिक आनंद का घट... घट... (अनुभव होता है)। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–७८, दि. १८–०७–७५, प्र.–९३, ४८:०० मिनट पर)

*

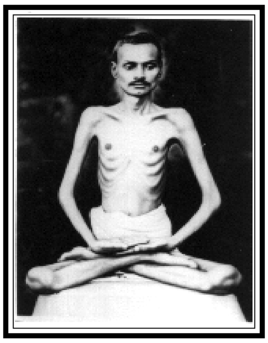

- परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक - ३८५

बंबई, आषाढ़, १९४८

सूर्य उदय-अस्तरहित है, मात्र लोगोंको जब चक्षुमर्यादासे बाहर हो तब अस्त और जब चक्षुमर्यादामें हो तब उदय ऐसा भासता है। परंतु सूर्यमें तो उदय अस्त नहीं है। वैसे ही जो ज्ञानी हैं, वे सभी प्रसंगमें जैसे हैं वैसे हैं, मात्र प्रसंगकी मर्यादाके अतिरिक्त लोगोंका ज्ञान नहीं है, इसलिये उस प्रसंगमें जैसी अपनी दशा हो सकती है वैसी दशाकी ज्ञानीके संबंधमें कल्पना करते हैं; और यह कल्पना जीवको ज्ञानीके परम आत्मत्व, परितोषत्व, मुक्तत्वको जानने नहीं देती ऐसा जानना योग्य है।

जिस प्रकारसे प्रारब्धका क्रम उदय होता है उस प्रकारसे अब तो वर्तन करते हैं, और ऐसा वर्तन करना किसी प्रकारसे तो सुगम भासता है। ठाकुर साहबको मिलनेकी बात आजके पत्रमें लिखी, पर प्रारब्ध क्रम वैसा नहीं है। उदीरणा कर सकें ऐसी असुगम वृत्ति उत्पन्न नहीं होती।

यद्यपि हमारा चित्त नेत्र जैसा है; नेत्रमें दूसरे अवयवोंकी भाँति एक रजकण भी सहन नहीं हो सकता। दूसरे अवयवोंरूप अन्य चित्त है। हमारा जो चित्त है वह नेत्ररूप है, उसमें वाणीका उठना, समझाना, यह करना, अथवा यह न करना, ऐसा विचार करना बहुत मुश्किलसे होता है। बहुतसी क्रियाएँ तो शून्यताकी भाँति होती हैं; ऐसी स्थिति होनेपर भी उपाधियोगको तो बलपूर्वक आराधते हैं। यह वेदन करना कम विकट नहीं लगता, क्यों कि आँखसे जमीनकी रेती उठाने जैसा यह कार्य है। वह जैसे दुःखसे-अत्यंत दुःखसे-होना विकट है, वैसे चित्तको उपाधि उस परिणामरूप होनेके समान है। सुगमतासे स्थित चित्त होनेसे वेदनाको सम्यक्प्रकारसे भोगता है, अखंड समाधिरूपसे भोगता है। यह बात लिखनेका आशय तो यह है कि ऐसे उत्कृष्ट वैराग्यमें ऐसा उपाधियोग भोगनेका जो प्रसंग है, उसे कैसे समझना? और यह सब किसलिये किया जाता है? जानते हुए भी उसे छोड़ा क्यों नहीं जाता? यह सब विचारणीय है।

मणिके विषयमें लिखा सो सत्य है।

'ईश्वरेच्छा' जैसी होगी वैसे होगा। विकल्प करनेसे खेद होता है; और वह तो जब तक उसकी इच्छा होगी तब तक उसी प्रकार प्रवृत्ति करेगा। सम रहना योग्य है।

दूसरी तो कोई स्पृहा नहीं है, कोई प्रारब्धरूप स्पृहा भी नहीं है, सत्तारूप कोई पूर्वोपार्जित

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १७ पर..)

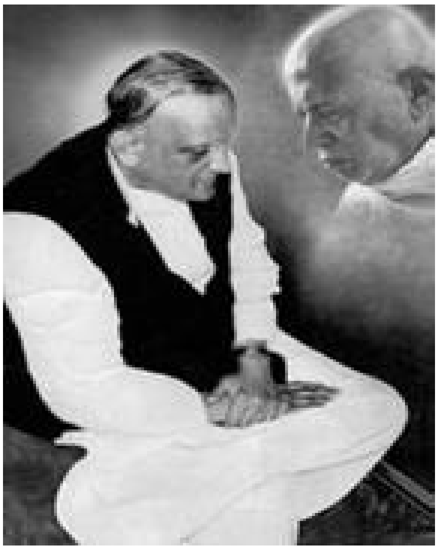

वस्तु साक्षात है, फिर कल्पना क्यो ?

– पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी

जैसे भूँगली को पकड़े हुए शुकको ऐसा लगता है कि 'मैं उलटा हूँ, यदि सुलटा होता तो फ़ौरन उड़ जाता'; ऐसे अज्ञानी को ऐसा लगता है कि 'मैं विकारी हूँ, इसलिए आत्मा को कैसे प्राप्त कर सकूँ?' अरे भाई! सुलटे-उलटे की बात ही नहीं है; परिणाम से छूटा तो ध्रुवपर ही आएगा। (-पर्यायबुद्धि छुटनेपर आत्मा में ही आत्मबुद्धि होगी)। भूँगलीको शुक छोड़ता...तो उड़ ही जाता, क्योंकि उड़ना उसका स्वभाव है। - ऐसे परिणामसे खिसके तो त्रिकालीदलमें ही आएगा। (२२९)

*

वस्तु साक्षात् मौजूद पड़ी है, मात्र कल्पना नहीं करना लेकिन उस रूप हो जाना- तन्मय होकर असंख्य प्रदेश में व्याप्त हो जाना। जब वस्तु साक्षात् है तो फिर मात्र कल्पना क्यों करना? - उस रूप परिणम जाना ! (स्वरूप के प्रत्यक्ष अनुभव काल में 'आत्मप्रत्यक्षता' के अवलंबन से उत्पन्न पुरुषार्थ का यह प्रकट चितार है।) (२३२)

*

'मैं निरावलम्बी तत्त्व हूँ'- इसकी तो पूरी मुख्यता होनी चाहिए; और दीनताका (परावलम्बीपनेका) पूरा-पूरा दुःख मालूम होना चाहिए। (२३६)

*

सुननेके कालमें भी 'मैं निरावलम्बी तत्त्व हूँ' - यहाँसे शुरू करना चाहिए, फिर सुननेका भाव आएगा किन्तु उसकी मुख्यता नहीं होगी। (२४१)

*

सिर्फ़ बैठक ही बदलना है। परिणामपर बैठे हो तो वहाँसे उठकर अपरिणामीपर बैठ जाओ...बस, इतनी-सी बात है। (२४८)

*

(मात्र) विचार करनेसे वस्तुका पत्ता नहीं लगता (आत्माका अनुभव नहीं होता) वस्तु तो प्रत्यक्ष मौजूद है, बस! इसीमें प्रसरकर बैठ जाना, बिराजमान हो जाना। (२५४)

*

ये किस प्रकारकी बीमारी तुझे लग गई है?

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

जिसे स्वरूप प्राप्तिकी भावना वर्तती न हो या उत्पन्न न होती हो ऐसे जीवको पुद्‌गल प्राप्तिकी भावनाके कालमें थोडी विशेष जागृतिपूर्वक आत्माको कोसना कि, क्या है? तुझे कितना भटकना है? अभी भी और तुझे कितना भटकना है? क्या विचार है? अभी भी थकान नहीं लगी क्या? क्या इतना निराकुल सुंदर वीतरागमार्गकी अभी भी चाहत नहीं है, अभी भी नहीं सुहाता? अभी भी तुझे संसारमें हैरान-परेशान होनेका रास्ता ही पसंद है? क्या हो गया है तुझे? किस प्रकारकी बीमारी तुझे लग गई है? इसप्रकार भीतरमें अपने आप को ठीक से प्रश्न करना चाहिये।

मुमुक्षु :- इसलिये नरक, निगोदका दुःख दिखाते हैं?

पूज्य भाईश्री :- इसलिये वे सब बातें आती हैं कि, यह पूरी तेरी कहानी है, भाई! दूसरे की नहीं, यह तेरी ही कथा है और यह इसलिये कहते हैं कि (वर्तमानमें) अगर भूल करेगा तो फिर से वही स्थिति होगी, कुदरतका कानून है, यह अनिवार्य स्थिति है, इसे रोकना फिर नामुमकिन है। दो हज़ार सागर तो त्रसका उत्कृष्ट काल है। इस त्रस कालमें भी दो इन्द्रियसे लेकर नरकके दुःख तो त्रसके हैं। बादमें इससे भी भयंकर और खराब स्थिति है - जो कि निगोदकी है। उसके दुःख तो एक सर्वज्ञ जाने और निगोदका जीव इसका अनुभव करे बस! वाणीका विषय नहीं है।

मुमुक्षु :- फिर भी वहाँ भीतरमें वैसाका वैसा अखंड है?

पूज्य भाईश्री :- सो तो जीवकी शक्ति और सामर्थ्य है। इसकी पहचान कर इसका अवलंबन ले, इसका आश्रय करे तो छुटकारा है। इतनी-इतनी यातना भोगने पर भी वैसा का वैसा अक्षय अखंड पद है यह इसकी शक्तिकी बेहद विशिष्टता है! इसकी दरकार करनेके लिये, ग्रहण करनेके लिये सब विस्तार है, ताकि हम इसे लक्ष्यगोचर करें।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-६१, 'अध्यात्म सुधा' भाग-२, पन्ना-२९०,२९१)

*

अखंडके साधक !!

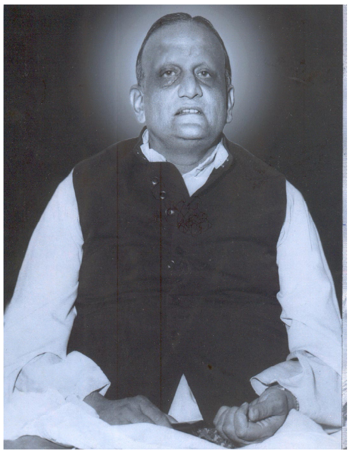

पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी संबंधित हृदयोद्गार !!

- प्रशममूति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

प्रश्न :– 'निहालभाई' कहते हैं कि, विचार कोई साधन नहीं है। वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है, उसमें प्रसरकर बैठ जा। तो यहाँ वस्तु प्रत्यक्ष है माने क्या?

उत्तर :– वस्तु तो प्रत्यक्ष ही है न... तुम स्वयं ही हो। विचार प्रथम होते हैं जरूर, जो विचार वस्तु का निर्णय करने के लिये, प्रमाण–नय आदि के विचार होते हैं परन्तु वे साधन नहीं और विचारों में अटकता रहे तो वस्तु प्राप्त नहीं होती।

*

'निहालभाई' कहते हैं कि, 'पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ ?' यह बात द्रव्य को लक्ष में रखकर की है, अपनी धुन की बात कही है। द्रव्यदृष्टि का बल आता है वह वेदन में आता है।

*

'श्रीमद्' कहते हैं कि, आँख से रेत उठवाना वह स्वभाव से विभाव कराने के बराबर है और 'निहालभाई'ने (कहा कि) स्वभावमें से बाहर निकलना वह भट्ठी लगती है। दोनों में एक ही भाव है। 'भट्ठी जैसा कहना' वह 'आँख से रेत उठवाने' जैसा है। भाषा की कथन पद्धति अलग–अलग है।

*

प्रश्न :– 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम' इसमें तो वस्तुविचार से अनुभव होता है ऐसा कहा जबकि, 'निहालभाई' विचार की मना करते हैं तो क्या समझना?

उत्तर :– यहाँ भी 'मन पावे विश्राम' ऐसा लिया है न ? अर्थात् विचार से मन छूटता है तब अनुभव होता है। विचार से अनुभव नहीं होता। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है तब मन भी छूट जाता है तो सिर्फ विचार करने से वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती है ? मन से वस्तु उस पार है।

*

प्रश्न :– 'श्रीमद्जी' में आता है कि, 'आत्मभ्रांति सम रोग नहि... औषध विचार ध्यान'

इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- हाँ, आता है कि, प्रथम भूमिका में विचार होता तो है परन्तु वह साधन नहीं है। 'निहालभाई' कहते हैं कि, अन्दर में प्रसर जा। स्व में प्रसर जाना वही विधि और कला है। प्राथमिक भूमिका में सब आता है, होता है बाद में छूट जाता है। (दि. १२-४-७२)

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' कहते हैं कि, 'ज्ञानी छः खंड को नहीं लेकिन अखंड को साधते हैं।' इसका मतलब क्या ?

उत्तर :- ज्ञानी की अखंड पर दृष्टि कायम रहती है। चाहे किसी भी कार्य में बाहर लगे हो फिर भी दृष्टि तो अखंड पर पड़ी है। अखंड पर दृष्टि न रहे तो आत्मदृष्टि रहे नहीं। दृष्टि अखंड पर है इसलिये छः खंड को नहीं अपितु अखंड को साधते हैं, ऐसा कहा है। लड़ाई के समय भेदज्ञान की परिणति चालू ही रहती है। दिखता भले ही हो कि, छः खंड साधते हैं, राज-काज में प्रवृत्ति है परन्तु उस वक्त भी अखंड को ही साधते हैं। (दि. २९-४-७२)

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' कहते हैं परिणति प्रवेश करती, रमती, उघड़ती है, इसका मतलब क्या?

उत्तर :- यह तो परिणाम अंदर जाये उसकी बात है। परिणति अंदर जाती है तब उघड़ती जाती है। रमती जाती है मतलब स्वरूप में रमणता होती है। और प्रवेश करना मतलब 'सर्व गुणांश वह सम्यक्त्व' (इस प्रकार) प्रवेश होनेपर सर्व गुणों की निर्मल पर्याय सम्यक्‌रूप होती है। (दि. २९-७-७४)

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' ने कहा कि, देव-शास्त्र-गुरु सब पर हैं, पर हैं माने क्या ?

उत्तर :- देव-गुरु-शास्त्र पर हैं - उसमें सर्वस्वता नहीं है। अपने चैतन्य की सर्वस्वता है। किसी न किसी प्रकार की धुन होगी सो कहा है। उन्हें इस प्रकार की धुन रहती थी। 'प्रवचनसार' में आचार्यदेव को केवलज्ञान की कैसी धुन है ! और क्षयोपशमज्ञान की निंदा की है। 'समयसार' में आचार्यदेव को ज्ञायकभाव की धुन है। 'नियमसार' में परमपारिणामिकभाव की धुन है।

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' में आता है कि, पर्याय में खड़े रहकर विचार मत कर, अंदर में जा। तो इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- तू अंदर में जा, पर्याय में खड़े रहकर विचार करता रहा तो अंदर नहीं जा सकेगा, तेरी दृष्टि को पलट, पुरुषार्थ करके द्रव्य को पकड़ ले।

*

बंधवृत्तिका यथार्थ उपशमन कैसे हो ?

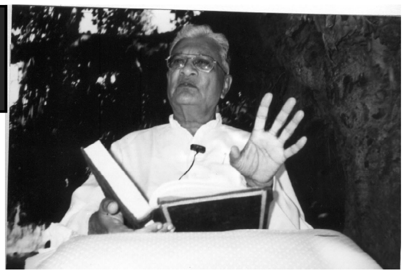

श्रीमद् राजचंद्र , पत्रांक-५१० पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत। पत्रांक - ५१०। *'श्री स्थम्भतीर्थस्थित शुभेच्छासंपन्न श्री त्रिभुवनदासके प्रति यथायोग्यपूर्वक विनती कि'* खंभातके जो त्रिभुवनदास (नामके) मुमुक्षु थे उन पर यह पत्र लिखा है। त्रिभुवनदासभाईके प्रति पत्र लिखा है परंतु सभी मुमुक्षुओंको इस पत्रका मार्गदर्शन प्रयोजनभूत है। (विषय) लागू पड़े ऐसा होनेसे प्रयोजनभूत है। ज्ञानियोंका मार्गदर्शन अनेक प्रकारका होता है। और शास्त्रका उपदेश भी अनेकविध - अनेक प्रकारसे चला है। उन सबमें हमारे लायक कौनसी बात है ? हमारी भूमिकामें हमको लागू पड़े और हम इसका सद्उपयोग करके वर्तमान स्थितिसे एक कदम भी आगे बढ़े; कमसे कम इतना लक्ष रहे तो ये पढ़ना, सुनना सार्थक है। वरना कितना भी पढ़ा जाये, सुना जाये (सब) निरर्थक हैं।

बहुत अभ्यास करनेवालेको भी अगर इस प्रकारका लक्ष्य नहीं रहा तो ये सब पढ़ाई बेकार समझना। मेरा प्रयोजन कहाँ है ? उसकी खोज, उसकी जिज्ञासा, वह दृष्टिकोण साध्य करके शास्त्रका स्वाध्याय होना चाहिये। अगर इस प्रकारसे शास्त्रका स्वाध्याय नहीं रहा तो ये स्वाध्याय, स्वाध्याय ही नहीं रहेगा। चाहे विद्वता आ जायेगी, चाहे पंडिताई भी आ जायेगी लेकिन अपनेमें कुछ सुधार होगा नहीं।

यह पत्र स्वाध्यायमें लेनेका खास कारण यह है कि, इसमें जो बातें हैं, वे हम लोगोंकी भूमिकाकी हैं और हमको लागू पड़े ऐसी हैं।

'बंधवृत्तियोंका उपशम करनेके लिये और निवर्तन करनेके लिये जीवको अभ्यास, सतत अभ्यास कर्त्तव्य है, क्योंकि विचारके बिना और प्रयासके बिना उन वृत्तियोंका उपशमन अथवा निवर्तन कैसे हो?' बंधवृत्ति माने क्या ? जहाँ-जहाँ जीवकी वृत्ति प्रतिबद्धताको प्राप्त होती है, उसे बंधवृत्ति कहते हैं। प्रतिबद्ध माने क्या ? रागसे, द्वेषसे, मोहसे (या) किसी भी परिणामसे आत्मा वहाँ रुक जाता है। प्रतिबद्ध होता है माने बद्धताको प्राप्त होता है, बंधनको प्राप्त होता है, पराधीन होता है, दीनताको प्राप्त होता है यानी रुक जाता है। ऐसी जीवकी वृत्ति है। वृत्ति माने परिणमन। उसका उपशमन करनेके लिये। उपशमन माने उसका रस ठंडा करनेके लिये। उपशमका अर्थ क्या है ? नीरस होना। रस नीरसताको (प्राप्त) हो जाये (उसे उपशम कहते हैं)।

जिन-जिन पदार्थ पर बाहर जो परिणाम जाते हैं - पंचेन्द्रियके विषयमें और-और भी कई प्रकारके (पदार्थ पर परिणाम जाते हैं)। (दृष्टांतरूपसे लें तो) सम्पत्ति, परिवार, सत्ता, अधिकार (आदि) अनेक प्रकारके जो (पदार्थ) होते हैं - जिसको जैसा उदय हो, वहाँ जीवको रस आता

है। वह नीरस हो जाना चाहिये। इस प्रकारका अभ्यास होना (चाहिये)। या तो उसका निवर्तन (होना) यानी नाश कर देना। वैसे परिणाम होवे ही नहीं। पहले रस ठंडा होता है, फिर उसका नाश होता है। यह (इसका) क्रम है। इसलिये (अगर) रस ठंडा नहीं किया हो तो रस ठंडा करो। (और) रस ठंडा किया हो तो उसका नाश करो। (फिर रस) उत्पन्न ही नहीं होवे। यह इसका क्रम (है)।

'बंधवृत्तियोंका उपशम करनेके लिये और निवर्तन करनेके लिये जीवको अभ्यास, सतत अभ्यास कर्त्तव्य है,...' अभ्यास माने practice- प्रयास। उस प्रकारका सतत प्रयास करना चाहिये। बार-बार करना, इसलिये उसको अभ्यास कहते हैं। अभ्यास माने बार-बार प्रयत्न करना। बंधवृत्तिका उपशम या निवर्तन होवे, ऐसा बार-बार प्रयास करना चाहिये, सतत करना चाहिये। निवर्तन (करना) माने नाश करना - निवृत्ति करना - अभाव करना।

'क्योंकि विचारके बिना और प्रयासके बिना उन वृत्तियोंका उपशमन अथवा निवर्तन कैसे हो?' पहले उस संबंधी विचार करना चाहिये - कि, ये (वृत्ति) मुझे नुकसान करती है, मुझे दुःखदायक है, आकुलता कराती है। इसलिये अगर इसका रस ठंडा होगा (तो) आकुलताका पारा नीचे आयेगा। या उसका नाश कर दे। इसका विचार भी करना चाहिये। प्रयास विचारपूर्वक होता है। जो लोग इसका विचार नहीं करते हैं, उनको तो रस ठंडा होनेका कोई अवकाश नहीं है (और) नाश होनेका भी कोई अवकाश नहीं है। इसलिये विचारपूर्वक प्रयास करना चाहिये।

'कारणके बिना किसी कार्यका होना सम्भव नहीं है;...' कोई कार्य होता है उसके पहले इसका कोई कारण होता है। कारण बिना कोई कार्य नहीं होता। यह कार्यका science है - विज्ञान है। कोई भी result आता है, उसके पीछे कोई कारण होता है। बिना कारण (कोई) कार्य होता नहीं। जैसे हम मनुष्य हुए तो इसका भी कोई कारण है। मनुष्य तीन प्रकारके हैं - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। इनके भी कारण हैं। मनुष्य मायावी भी होते हैं और सरल भी होते हैं तो इसका भी कारण है। क्रोधी भी होते हैं और (कोई) शांत भी होते हैं तो इसका भी कारण है। (कोई) उदार भी होते हैं और लोभी भी होते हैं तो इसका भी कारण है। हर कार्यका कारण होता ही है। कारण बिना कार्य नहीं (होता)। यह एक वस्तुका विज्ञान है - science है।

'कारणके बिना किसी कार्यका होना संभव नहीं है; तो फिर यदि इस जीवने उन वृत्तियोंके उपशमन अथवा निवर्तनका कोई उपाय न किया हो तो उनका अभाव नहीं होता, यह स्पष्ट सम्भव है।' ये बंधवृत्ति दुःखदायक है। जीवको बंधनमें, जेलमें, कैदखानेमें डालती है। ये सब (शरीर) कैदखाने हैं। ये मनुष्यका देह, तिर्यंचका देह, कुत्तेका शरीर मिलता है, सर्पका शरीर मिलता है, बैलका शरीर मिलता है। ये (सब) क्या है ? सब कैदखाने हैं। अलग-अलग grade की ये (सब) जेल हैं।

अनुभव प्रकाशमें दीपचंदजी साहब लिखते हैं कि, देखो ! तुम अभी तक कैसे-कैसे कैदखानेमें गये हो ! कभी छिपकली बना, कभी कुत्ता बना, कभी क्या बना, कभी क्या बना ! देखो ! ऐसा कहकर एक taunt लगाया कि, तुम्हें शरमिंदा होना चाहिये ! ऐसे-ऐसे भवमें

बार–बार जायेगा! अगर तुम इस बातको समझकर अपने परिणाममें सुधार नहीं करोगे तो ये शर्मजनक भव हैं, वे तुम्हें बार–बार मिलेंगे। तुम्हें शरम नहीं आती है ? ऐसे भव धारण करनेमें तुम्हें शर्म नहीं आयेगी क्या ? ऐसा कहते हैं। (अभी तक कभी) वास्तविक उपाय किया नहीं, सच्चा उपाय किया नहीं, झूठा उपाय किया है और झूठा उपाय करके भी उपाय करनेका अभिमान किया है। 'मैंने ये किया, (मैंने) वह किया, इसका त्याग कर दिया, उसका त्याग कर दिया' इसका अहंभाव किया। दान किया और पैसे दे दिये, तो उसका अभिमान किया।

अन्यमत जैसे अन्यमतमें भी इतनी बात आती है कि, तुम अच्छा कार्य करो तो इसके फलकी वांछा मत करो। (ऐसा) गीतामें आता है। जैनमतमें तो इससे बड़ी कुछ बातें हैं कि, किसी भी प्रकारके बदलेके परिणाम नहीं होने चाहिये। 'ऐसा करेंगे तो ये मिलेगा... ऐसा करेंगे तो ये मिलेगा' (ऐसा नहीं होना चाहिये)। पैसे देंगे तो मान मिलेगा, (ऐसा भी नहीं होना चाहिये)। हमारे शास्त्रोंमें इन (सभी) बातोंका बहुत कड़ा निषेध है। मान पोषण हेतु दान नहीं दिया जाता। फिर भी आज हमारे तीर्थमें हम देखते हैं कि, एक–एक सीढ़ी पर, एक–एक चौकी पर, पंखेकी एक–एक पंख पर नाम लिखा (दिखता) है। और कई (जगह) तो दो–दो, तीन–तीन नाम लिखे होते हैं। 'फलाना... फलानाकी धर्मपत्नी फलानी... फलानी...' (तुझे) क्या हो गया है ? मालूम नहीं पड़ता। (ऐसा करनेसे) पापबंध होता है। दान देनेके बदलेमें वहाँ मानका पापबंध होता है। आज उतनी भी समझ चली गई है ! तत्त्वका अभ्यास नहीं होनेसे उतनी भी समझ चली गई !

१९९६ के मई महिनेमें माउन्ट आबुमें शिबिर थी तो वहाँ गये थे। वहाँ प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालयका मुख्य केन्द्र है। क्रोड़ों रुपयोंको खर्च किया है। कितना ? क्रोड़ों रुपयोंका खर्च किया है, (लेकिन) एक जगह भी किसीका नाम नहीं है कि, इसका ५१/– रुपया मिला है या इसका ५१/– लाख रुपया मिला है। दोमें से किसीका नाम नहीं है। न (तो) ५१/– (रुपया देनेवालेका) नाम है, न (तो) ५१/– लाख रुपया (देनेवालेका) नाम है।

पहले सोनगढमें ऐसा था। जब तक गुरुदेव बिराजते थे, सोनगढमें पैसे आये तो (भी) किसीका नाम नहीं था। कहीं भी नाम नहीं था। आज–कल थोड़ा चालू हो गया है। जैसे काल जाता है, (वैसे) विकृति आती रहती है। नामकी शर्त पर दान लिया ही नहीं जाता। कोई बोले कि, हम इतना (पैसा) देंगे, हमारा वहाँ नाम लिखीये। (हम कहते हैं) 'वह बात मत करो ! (आपको) देना हो तो दो, नहीं देना हो तो मत दो।' हम आपको मानका पोषण करायेंगे नहीं। इसमें क्या है ? आपको मानका पोषण करना है तो भी हम इसका अनुमोदन करेंगे नहीं। उसमें ऐसी बात है।

ब्रह्माकुमारीवाले तो ईश्वरकर्तामें माननेवाले हैं लेकिन एक जगह भी किसीका नाम नहीं है। एक और जगह भी ऐसा देखा था। लंदनमें सहजानंद स्वामीनारायणका बहुत बड़ा मंदिर है। इतना अच्छा बनाया कि 'गिनेस बुक ओफ वर्ल्ड रेकोर्ड' में इसका नाम आया ! (मंदिर

बनानेमें) क्रोड़ों रुपये डाले हैं। (लेकिन वहाँ भी) किसीका नाम नहीं है। इतना समर्पण है ! क्रोड़ों रुपये लगे हैं (फिर भी) किसीका नाम नहीं है। लंदनमें तो जगह भी इतनी कीमती है। (मंदिरके अंदर) बहुत कीमती चीजोंका उपयोग किया है। पाँच हजार आदमी बैठ सके ऐसा एक व्याख्यान होल बनाया है। पूरा वातानुकूलित है और कोई खंभा नहीं है। और जमीन पर कीमती गालीचा लगाया है। पैर पोंछनेसे लेकरके, बाथरूमसे लेकरके सब चीज एकदम साफ है। दस-बीस कदम पर गाइड करनेके लिये स्वयंसेवक खड़े रहते हैं - इधर जाईए, इधरसे जाईए (ऐसे रास्ता दिखाते हैं)। शांत... शांत... शांत... वातावरण (था)। वहाँ कोई तनखादार आदमी नहीं है। सब भक्त लोग ही सेवा करते हैं। गृहस्थी लोग ही सेवा देते हैं। कोई नौकर नहीं है। ब्रह्माकुमारीमें भी कोई नौकर नहीं है। सब अपनी सेवा देते हैं। ये लोग जैनियोंसे भी आगे निकल गये ! उपदेश, तत्त्वज्ञान (जैसा) जैन धर्ममें है इसे विश्वमें कोई compare नहीं कर सकता। beat करनेका तो सवाल ही नहीं है (लेकिन) कोई compare नहीं कर सकता ! इतने ऊँचे स्तरका है !! लेकिन बाहरमें स्तर गिर गया ! यह चीज उन लोगोंके पास नहीं है। जो चीज हमारे घरमें है, वह चीज उन लोगोंके घरमें नहीं है। लेकिन गुणकी बात तो कहींसे भी लेनी चाहिये। अगर हम गुणग्राही हैं तो गुणकी बात तो कहींसे भी लेनी चाहिये।

* (शेष प्रवचन अगले अंकमें..)

(पन्ना नं ९ से आगे...)

उपाधिरूप स्पृहाका तो अनुक्रमसे संवेदन करना है। एक सत्संग-आपके सत्संगकी स्पृहा रहती है। रुचिमात्र समाधानको प्राप्त हुई है। यह आश्चर्यरूप बात कहाँ कहनी? आश्चर्य होता है। यह जो देह मिली है वह पूर्व कालमें कभी न मिली हो तो, भविष्यकालमें भी प्राप्त होनेवाली नहीं है। धन्यरूप-कृतार्थरूप ऐसे हममें यह उपाधियोग देखकर सभी लोग भूलें, इसमें आश्चर्य नहीं है। और पूर्वमें यदि सत्पुरुषकी पहचान नहीं हुई है तो वह ऐसे योगके कारणसे है। अधिक लिखना नहीं सूझता।

नमस्कार पहुँचे। गोशलियाको समपरिणामरूप यथायोग्य और नमस्कार पहुँचे।

समस्वरूप श्री रायचन्द्रके यथायोग्य।

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (मई-२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
श्रीमती ज्योतिबहिन किरीटभाई उदाणी, अमेरिका
की ओर से ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

मुनिपनामें आ जाये ऐसा जोर था!!

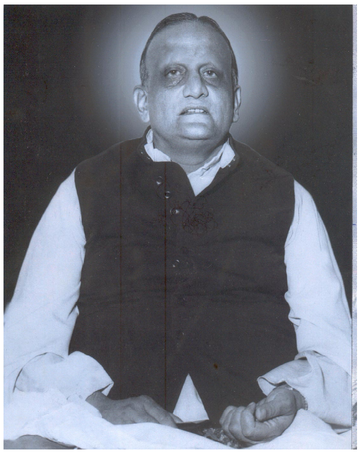

पूज्य निहालचन्द्र सोगानीजीके प्रति भक्तिपूर्ण ह्रदयोद्गार !!

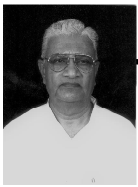

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

मुमुक्षु :- त्रिकाली ध्रुवका विषय सोगानीजी ने बहुत लिया।

पूज्य भाईश्री :- उन्होंने तो अपनी चर्चामें वह विषय मुख्यरूपसे लिया। वास्तवमें हुआ ऐसा कि, उनका द्रव्य ही कोई विशिष्ट था कि जिसके कारण वे छूटनेकी तीव्र भावनामें आ गये बादमें उन्हें 'गुरुदेवश्री'का संयोग हुआ। इससे पहले वर्तमान मिथ्यात्वरूप अज्ञान संयुक्त दुःखमय परिस्थितिसे छूटनेके लिये बहुत छटपटाये हैं। इतनी हद तक छटपटाये हैं कि इसकी वेदनाकी कोई सीमा नहीं थी! बेहद वेदनामें आये जो कि उनका परिपक्व सुयोग्य काल (था) और ऐसी स्थिति जब होती है तब नैसर्गिकरूपसे निमित्तका संयोग हो जाता है। वरना कहाँ 'अजमेर' और कहाँ 'सोनगढ़'। पाँच सौ मीलकी दूरी है। इतना दूर है। करीब-करीब पाँच सौ होंगे। इतनी दूरसे आना हुआ। पहले कभी नहीं आये थे, अकेले चले आये और जैसे उबले हुए दूधमें जामन डलते ही दही जम जाता है, वैसे बोध मिला कि 'यह ज्ञान और राग जुदा छे' बस! पूरा ज्ञानतत्व पकड़ लिया! रागसे भिन्न ऐसा अंतर तत्व है। बंध-मोक्ष रहित! उनकी भाषामें तो बहुत सी बातें आयी हैं। वे तो त्वरासे इसकी धुनमें चढ़ गये और अनुभवमें आ गये। तत्पश्चात् प्रकृतिका क़हर ऐसा रहा कि सात साल तक बोधिदातार सद्गुरुके पास स्वयं आ न सके। इसकी पीड़ा भी उन्होंने बहुत व्यक्त की है। सात साल बाद आये तो सही फिर सात साल तक नहीं आ सके, ऐसा है। इन चौदह सालमें उन्होंने अकेले दम पर बहुत पुरुषार्थ किया है। ऐसा ही उनका कोई एकावतारी द्रव्य है कि ज़बरदस्त पुरुषार्थ किया है!!

सामान्यतया सत्समागमके अभावमें वर्तमान देश कालको देखते हुए इस मार्गमें टिकना मुश्किल है। इस कालमें असत्संग और असत्प्रसंगका इतना घेराव है कि, जीव मार्गसे च्युत हो जाये यह बहुत सहजमात्रमें बनता है। इनकी तो योग्यताविशेष कोई ऐसी थी कि, बिलकुल सात-सात वर्ष तक सत्संगका अभाव! फिर भी बहुत पुरुषार्थ किया है!!

मुमुक्षु :- (कहींपर) ऐसी बात आती है कि, इस कालमें सम्यग्दर्शनके लिये जितना पुरुषार्थ जीव करे उतना यदि चतुर्थकालमें करे तो केवलज्ञान ले ले, इतना प्रतिकूल काल है!!

पूज्य भाईश्री :- हाँ, प्रतिकूल काल है! उन्हें तो संयोगकी प्रतिकूलताके वर्ष इतने थे। नहीं

आ सके इसका कारण संयोगकी अनुकूलता नहीं थी। ऐसे बहुत प्रतिकूल संयोगके बीच योग्यतावश बहुत पुरुषार्थ किया है। एकतरफ तीव्र प्रतिकूलता तो दूसरी तरफ तीव्र पुरुषार्थ। ऐसे आमने-सामने वाली बात थी। गज़ब कार्य किया है अतः यह ऐसा जो उनका प्रकार बनता चला कि अकेले दम पर भीतरमें समाते गये...समाते गये! बाह्यमें जो गुरुसे उपदेश मिला उनके संयोगका प्रसंग भी नहीं!! तो भीतरमें ऐसा संकल्प कर लिया कि, उन्होंने जो चीज़ बतायी है सो तो मैं ही स्वयं हूँ, अपनेसे मैं कहाँ दूर हूँ? अतः अपनेमें ही समाये रहूँ यह वृत्ति ज़ोर कर गई। पुरुषार्थने वेग पकड़ा और वेगमें ही वेगमें उन्होंने ये सब पत्र लिखे हैं और चर्चाएँ चली हैं। इस वज़हसे उनके वचनोंमें पुरुषार्थ क्या चीज़ होती है यह झलकता है। हालाँकि पुरुषार्थ अवस्था-अंग है और ज्ञानी उसे जानते हैं कि किस गुणस्थानमें कैसा-कैसा पुरुषार्थ है और वह गौणरूपसे जाननेका विषय होनेके बावजूद भी इनके वचनोंमें यदि कोई उभरती हुई बात है तो वह पुरुषार्थकी है। यह लक्ष्यमें लेने जैसी बात है।

वस्तु व्यवस्थाकी समझमें कोई गड़बड़ी न हो और पुरुषार्थको उजागर करने हेतु यदि कोई शास्त्र पढ़ने योग्य है तो 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' उत्तम शास्त्र है ऐसा कहना उचित है। बहुत उत्तम शास्त्र है! समझमें द्रव्य-गुण-पर्याय विषयक या दूसरा कोई विपर्यास न हो, वस्तु व्यवस्थाकी समझ स्पष्ट हो, अब अंतरमें पुरुषार्थ पूर्वक ढलना हो इसके लियें विशेष निमित्तभूत शास्त्र अगर कोई चाहिये तो 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' इसके योग्य शास्त्र है। उनका जोर बहुत था न! बहुत जोर था!! आयु शेष होती तो मुनिपनामें आ जाये ऐसा जोर था!! ऐसी दशा! आयु भी नहीं थी और दूसरी ओर उनके पास समय नहीं था उतना!

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' -४७, 'अध्यात्म सुधा' भाग - २, पन्ना-१२०,१२१)

'द्रव्यद्रष्टि प्रकाश' नई आवृत्ति जिज्ञासुओंके लिए भेंट

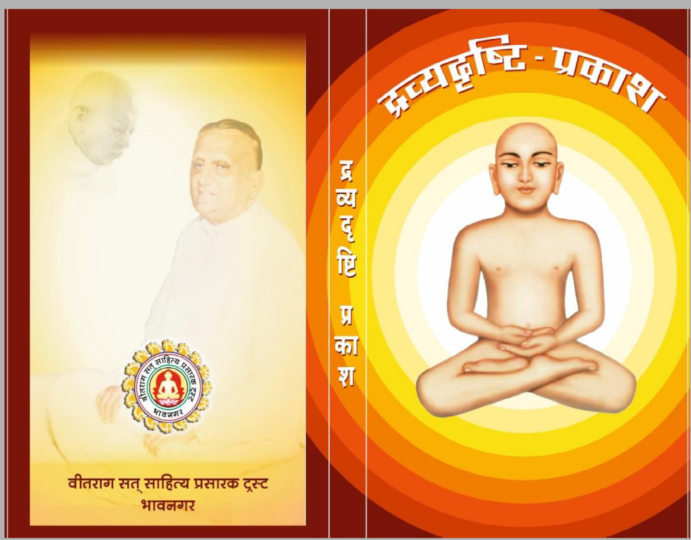

पूज्य निहालचंद्र सोगानीजीके
११४ वे मंगलकारी जन्मोत्सवकी
खुशहालीमें
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक
ट्रस्ट, द्वारा प्रकाशित ग्रंथ
'द्रव्यद्रष्टि प्रकाश'
की प्राप्ति हेतु....

संपर्क
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
श्री नीरव वोरा, मोः ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

... दर्शनीय स्थल...

'गुरु गौरव'

सोनगढ़

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3620**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041